दिनांक 07 मार्च, 2010 को जोधपुर में आयोजित डा0 लक्ष्मी मल्ल सिंघवी व्याख्यानमाला हेतु महामहिम श्री राज्यपाल का उद्बोधन

मनुष्य जीवन की सार्थकता

सम्माननीय स्वर्गीय डा0 लक्ष्मी मल्ल सिंघवी जी को अपने श्रद्धा सुमन अर्पित कर मैं अपनी बात प्रारम्भ करूंगा। भाई सिंघवी जी को मैनें बहुत निकट से देखा। मेरे विद्यार्थी जीवन से ही मुझे उनका स्नेह भी मिला। जब डा0 सिंघवी की स्मृति में व्याख्यान की चर्चा हुई एवं सम्माननीया डा0 कमला सिंघवी ने मुझे इस कार्य के लिये चुना तो मैं संकोच में तो पड़ा क्योंकि मुझसे कही अधिक विचारवान व्यक्ति जो डा0 सिंघवी के विषय में बहुत कुछ कह सकते हैं हमारे बीच मौजूद हैं, पर कमला जी ने स्नेहवश यह अधिकार मुझे ही दिया। मैं उनका आभारी हूँ। यह प्रश्न स्वतः ही उठा कि मुझे किस विषय पर बोलना चाहिये। डा0 सिंघवी एक विशाल व्यक्तित्व के धनी थे। वे एक दार्शनिक थे, शिक्षाविद् थे, कानून–विशेषतः संवैधानिक विषयों के प्रकांड ज्ञाता थे, दयावान, शीलवान, संवेदनशील एवं व्यवहार कुशलता जैसे गुण उनमें कूट–कूट कर भरे थे। इन सब गुणों के समावेश से वे मनुष्यत्व के एक उच्च शिखर तक पहुँचे थे।

मैंने इसीलिये आज उनके जीवन से प्रेरणा लेकर ''मनुष्य जीवन की सार्थकता'' पर बोलना उचित समझा।

वास्तविक मनुष्य वही होता है जिसमें दूसरों के लिए जीने का जज्बा होता है। वही सोच उसके व्यक्तित्व को विशालता प्रदान करती

है। एक अज्ञात रचनाकार की एक अत्यंत प्रेरक कथा है कि दो बीमार व्यक्ति एक अस्पताल में अगल–बगल के बिस्तर पर थे। एक जीवन से बहुत निराश था और दूसरा जीवन से भरा हुआ। दूसरा पहले को खिड़की की ओर इशारा करके बताता था कि बाहर कितना सुन्दर प्राकृतिक दृश्य है। सड़क पर बच्चे खेल रहे हैं। दूसरे ओर से बारात गुज़र रहीं है। लड़के–लड़कियाँ नृत्य कर कर रहे हैं इत्यादि। यह क्रम कई दिनों तक चलता रहा। निराश व्यक्ति धीरे–धीरे जीवन के प्रति आशावान होने लगा। एक सुबह दूसरे आदमी को बिस्तर पर नहीं पाने पर नर्स से पूछा कि वे कहां गये है तो नर्स ने बताया कि वे कल गुज़र गये, नहीं रहे। यह सुनकर वह नर्स को जब यह बताने लगा कि वह बहुत अच्छा आदमी था। मुझे खिड़की से देखकर हर रोज बाहर सड़क पर हो रही गतिविधियों को बताता रहता था। इस पर नर्स ने उसे बताया कि वे तो नेत्रहीन थे और खिड़की के उस पार तो दीवार है। कमरे में सन्नाटा छा गया। जैसे–जैसे हमारा दृष्टिकोण विशाल होता जाता है, स्वार्थ भावना कमजोर होती जाती है। व्यक्तिगत स्वार्थ का स्थान सामाजिक स्वार्थ, सामाजिक सरोकार ले लेता है। धीरे–धीरे समाज की सीमायें फैलती जाती हैं एवं अतंतः हम वसुधैव कुटुम्बकम की भावना तक अपना विकास कर पाते हैं। यह जीवन की सार्थकता है एवं मनुष्यता की सर्वोच्च स्थिति है।

इन उन्नत विचारों, धर्मशास्त्रों के ज्ञान और उपदेशों के परिप्रेक्ष्य में देखना चाहिये कि वास्तविकता क्या है और हम क्यों भटक गये हैं? आज का मनुष्य समूह के अन्दर लुप्त हो गया है। सिनेमा, रेडियो,

टेलीविजन, समाचार–पत्र आदि अपने प्रचार के साधनों के द्वारा जो कुछ प्रचारित और विज्ञापित करते हैं, उसे ही वह मानने और स्वीकार करने लगा है। हमारा विचार बहुत कुछ यांत्रिक हो गया है और फलस्वरूप बौद्धिक शुद्धता आज खतरे में पड़ गयी है।

हमें आरम्भ से ही आरम्भ करना होगा ताकि जो कार्य हमारे सम्मुख आयें उन्हें हाथ में लेकर धीरे–धीरे अपने को प्रतिदिन निःस्वार्थ बनाने का प्रयत्न करें। इनके पीछे हमारी प्रेरक शक्ति क्या है, इस पर विचार करें तो हम पायेंगे कि प्रारम्भ में हमारे सभी कर्मों का हेतु स्वार्थपूर्ण रहता है, किन्तु धीरे–धीरे स्वार्थपरायणता अध्यवसाय से नष्ट हो जाती है। कर्म करके ही कर्मो का क्षय होगा। गीता के 18वें अध्याय में भगवान कृष्ण कहते हैंः

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः।।

धुँवे के पीछे अग्नि होगी ही उसी तरह हर कर्म में दोष होगा ही। हम ऐसा कोई भी कर्म नहीं कर सकते, जिससे कहीं कुछ शुभ न हो, और ऐसा भी कोई कर्म नहीं है, जिससे कहीं न कहीं कुछ अशुभ न हो। प्रत्येक कर्म अनिवार्य रूप से गुणदोष से मिश्रित रहता है। परन्तु फिर भी हमें सतत कर्म करते रहने का ही आदेश है। शुभ और अशुभ, दोनों के अपने अलग–अलग परिणाम होंगे, वे भी कर्म की उत्पत्ति करेंगे। शुभ कर्मों का फल शुभ होगा और अशुभ कर्मों का फल अशुभ। इसी दुविधा को दूर करने हेतु भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है ''कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन''। यदि हम अपने कर्मों में

आसक्त न हों, तो उन कर्मो से हमारी आत्मा पर किसी प्रकार का बन्धन नहीं पड़ता।

पांतजल योग सूत्र के अनुसार यदि मन को तालाब मान लिया जाय, तो उसमें उठने वाली प्रत्येक लहर, प्रत्येक तरंग शान्त तो हो जाती है, परन्तु वास्तव में बिल्कुल नष्ट नहीं हो जाती। ऐसी तरंगे चित्त में एक प्रकार का चिन्ह छोड़ जाती है तथा ऐसी सम्भावना का निर्माण कर जाती है, जिससे वह फिर उठ सके। इस चिन्ह तथा इस लहर के फिर से उठने की सम्भावना को मिलाकर हम 'संस्कार' कह सकते हैं। यद्यपि ये संस्कार ऊपरी दृष्टि से स्पष्ट न हों, तथापि ये अवचेतन रूप से अन्दर ही अन्दर कार्य करने में पर्याप्त समर्थ होते हैं। मैं इस मुहूर्त जो कुछ हूँ, वह मेरे अतीत जीवन के समस्त संस्कारों का प्रभाव है। यथार्थतः इसे ही 'चरित्र' कहते हैं, और प्रत्येक मनुष्य का चरित्र इन संस्कारों की समष्टि द्वारा ही नियमित होता है। यदि शुभ संस्कारों का प्राबल्य रहे, तो मनुष्य का चरित्र अच्छा होता है, और यदि अशुभ संस्कारों का, तो बुरा।

प्रबुद्ध विचारकों के विचारों और जीवन पद्धति का हमारी आत्मा पर गहरा प्रभाव पड़ता है। गांधी ने भारत के भाग्य को दुनिया के भाग्य से संयुक्त कर दिया। हमारे युग में अपने जीवन से उन्होंने यह प्रमाणित कर दिया कि आदमी की आत्मा जब ईश्वरीय ज्योति के प्रकाश से दीप्त होती है, तब उसकी शक्ति सबसे शक्तिशाली शस्त्र से भी बड़ी होती है। दृष्टिकोण की सार्वभौमिकता का विकास करने के लिए हमें मानवीय विद्याओं की शिक्षा देने की जरूरत है। उपरोक्त के संदर्भो में हमें देखना

है कि किस प्रकार डा0 सिंघवी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व ने समाज के अनेकानेक लोगों पर इतना सकारात्मक प्रभाव डाला था। यही वह कृतित्व है जो हमें मनुष्यत्व की सार्थकता की ओर ले जाता है– प्रेरित करता है। उनका जीवन एक उदाहरण था कि एक जीवन में हम अपने मनुष्यत्व को कितनी ऊँचाइयों तक ले जा सकते हैं। इन्हीं ऊँचाइयों में मैं जीवन की सार्थकता को देखता हूँ।

डा0 सिंघवी में सभी को मित्र बनाने की अद्‌भुत क्षमता थी और इसी क्षमता के कारण वे बहुत लोकप्रिय भी थें। हिन्दी साहित्य में उनके योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। डा0 सिंघवी ने अनेक राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों में महत्वपूर्ण पदों का निर्वाह करके भाषा, विधिबोध तथा विद्वता का प्रमाण दिया। उन्होंने संयुक्त राष्ट्र के न्याय का स्वाधीनता के अन्तर्राष्ट्रीय घोषण–पत्र का मसौदा तैयार किया। अनेक देशों के संविधान–निर्माण की परामर्श समिति में रहकर डा0 लक्ष्मीमल्ल सिंघवी ने अपने अद्‌भुत विधिवेत्ता होने को प्रमाणित किया। वे कई बार एल0एल0डी और डी0लिट् की उपाधियों से सम्मानित किए गए। पच्चीस से अधिक देश–विदेश के विश्वविद्यालय ने उनके ज्ञान का सम्मान किया। वे जिन महत्वपूर्ण संस्थाओं से जुड़े, उनमें प्रमुख हैं– भारतीय ज्ञानपीठ, इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र न्यास, भारतीय विद्या भवन इण्टरनेशनल, वेद प्रतिष्ठान, इण्डिया इण्टरनेशनल सेन्टर केन्द्र न्यास, विश्व जैन संगठन। वे कैंब्रिज विश्वविद्यालय और लैस्टर विश्वविद्यालय में ऑनरेरी प्रोफेसर भी रहे। और भी बहुत कुछ है उनके संबंध में, जिसे सीमित शब्दों में समेटा नहीं जा सकता।

विश्व भारतीय समाज को डा0 सिंघवी की एक बड़ी देन थी 'प्रवासी भारतीय दिवस'। प्रवासी भारतीयों के लिये उन्होंने बहुत ही उपयुक्त शब्द चुना था 'भारतवंशी'। डा0 सिंघवी भारतीय 'डायसपोरा' की उच्च स्तरीय समिति के अध्यक्ष भी बने। पहला प्रवासी भारतीय दिवस 9 से 11 जनवरी, 2003 को दिल्ली में सम्पन्न हुआ था। श्री कृष्णदत्त पालीवाल के मतानुसार डा0 सिंघवी ने आचरण का गाँधी दर्शन जिया और इसी आचरण शक्ति से प्रवासी भारतीयों की चिंता की। प्रवासी भारतीयों के वे संवाद–सेतु बने। ब्रिटेन में भारतीय उच्चायुक्त के पद पर हाई कमीशन में उनके बाद उस पद पर आने वालों के लिये उनका कार्यकाल एक उदाहरण बन गया है। भारत की अनेक सांस्कृतिक धरोहरों का ब्रिटेन के राजनयिक कार्यकाल में पता लगाया और उन्हें वापस भारत लाए।

महात्मा गाँधी के विचार से यदि जीवन को इस तरह जिया जाये कि हमारे आस–पास एवं दूरस्थ व्यक्ति एवं समाज हमारे कार्यो से लाभान्वित हो तो निश्चय ही इसमें एक नहीं पूरे समूह के जीवन की सार्थकता सुनिश्चित होती है। महात्मा जी का एक प्रिय श्लोक थाः– ''नहत्वं कामये राज्यं, नां स्वर्ग, नां पुनर्भवमः कामये सुखः तप्तानाम, प्राणिमाम आर्ति नाशनम।''

डा0 सिंघवी ने जिस प्रकार अपने ज्ञान एवं कार्यकलाप से व्यक्ति, समाज और सम्पूर्ण देश की सेवा की उसने उन्हें निज गौरव से तो आभूषित किया ही, किन्तु अपने साथ–साथ अनेक और लोगों के जीवन को भी सार्थकता प्रदान की और दूसरों के लिये प्रेरणा के स्रोत बने।

एक सार्थक जीवन के सारे आधारभूत सिद्धान्तों को डा0 लक्ष्मी मल्ल सिंघवी ने अपने जीवन में ढाला। वे एक प्रसद्धि विधिवेत्ता, संसदीय मामलों के गंभीर अध्येता होने के साथ–साथ सिद्धहस्त लेखक भी रहे हैं। लेखक के रूप में जो साहित्य उन्होंने हमें दिया है, वह भावी पीढ़ी के लिए प्रेरणा का जीवित दस्तावेज़ है। लेकिन उनके जीवन का यह सबसे प्रबल पक्ष था कि उन्होंने उच्च पदों पर रहते हुये एक सरल और जनकल्याण के लिए समर्पित जीवन जिया। उन्होंने जिस तरह मानवता की सेवा की है उससे उनके व्यक्तित्व की विशालता और अधिक बढ़ जाती है।

आचार्य श्री लक्ष्मीकान्त जोशी जी का कहना है–

''पर्वत ऊँचे–ऊँचे, बहुत ऊँचे होते हैं, मगर गहरे नहीं होते। सागर गहरे–गहरे बहुत गहरे होते हैं मगर उनमें ऊँचाई नहीं होती। जोधपुर के भूमिपुत्र डा0 लक्ष्मीमल्ल सिंघवी के व्यक्तित्व में पर्वतों से अधिक ऊँचाई और महासागरों से अधिक गहराई थी।''

डा0 सिंघवी अपने अनेक अप्रतिम गुणों के कारण अपने जीवन काल में ही ऐसे व्यक्ति बन गये थे कि दूसरों से उनकी तुलना करना कठिन हो जाता है। डा0 सिंघवी की तुलना हम केवल उनके व्यक्तित्व से ही कर सकते हैं।

मैं अपनी बात अल्लामा इक़बाल के एक शेर से समाप्त करता हूँ–

हज़ारों साल नरगिस अपनी बेनूरी पे रोती है,
बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदावर पैदा।

————